IJAER/March-April-2025/Volume-14/Issue-2 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal) Impact Factor:7.06

डॉ. अम्बेडकर का आर्थिक दर्शन

डॉ. हेमलता आंकोदिया
एसोशिएट प्रोफेसर, कॉलेज शिक्षा विभाग

''डॉ. बी. आर. अम्बेडकर अर्थशास्त्र में मेरे पिता हैं, अर्थशास्त्र में उनका योगदान अद्भुत है जिसे हमेशा याद रखा जाएगा।'' –डॉ. अमर्त्य सेन, अर्थशास्त्र के नोबेल पुरस्कार विजेता।

डॉ. अमर्त्य सेन, समाजवाद और आर्थिक विकास के सामंजस्य के कार्य के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित कहते हैं कि ''मानव जाति के इतिहास में बहुत कम महापुरुष ही डॉ. बी. आर. अम्बेडकर जैसे प्रगतिशील और बहुआयामी हुए हैं। लोग उन्हें भारतीय संविधान के पिता, एक कानूनविद और कुषल राजनीतिज्ञ के रूप में इतना अधिक जानते हैं कि इसकी तुलना में, उनके अर्थशास्त्र के क्षेत्र में योगदान को कम ही जाना जाता है।''

परिचय–

डॉ. अमर्त्य सेन का यह कहना सत्य भी है कि हमने बाबा साहब की अर्थशास्त्री वाली विधा को कैसे अभी तक अछूता छोड़ा हुआ है और विदेशों में उनके आर्थिक विश्लेषणों को कितना सराहा जाता है और उन्नति के लिए उपयोग में भी लिया जाता है।

डॉ. अम्बेडकर प्रमुखतः विष्व के सर्वोत्तम संस्थानों से प्रषिक्षित अर्थषास्त्री थे। उन्होंने अपनी अधिकतर डिग्रियाँ अर्थशास्त्र के क्षेत्र में ही हासिल कीं और ऐसे संस्थानों से की जो कि प्रमुखतः अर्थशास्त्र के क्षेत्र के लिए उत्कृष्ट शोध के लिए जाने जाते हैं जैसे– लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स, लंदन विश्वविद्यालय और कोलंबिया विश्वविद्यालय इत्यादि। उनके शिक्षकों में भी अधिकतर अर्थशास्त्र के क्षेत्र में ही महारथी थे जैसे– जॉन डेवी, जेम्स शॉटवेल, एडविन सेलिगमैन, जेम्स हार्वे रॉबिंसन आदि। अर्थशास्त्र पर और विशेष रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था पर डॉ. अम्बेडकर के काम बहुत ही व्यावहारिक हैं जो आज भी प्रासंगिक हैं।

 ISSN: 2278-9677

उनके शोध प्रबंध और अर्थशास्त्र से संबंधित काम आज भी अर्थशास्त्रियों के लिए एक लाइट–हाउस का कार्य कर रहे हैं। उनकी सर्वप्रिय कृतियों में उनके द्वारा लिखित अर्थशास्त्र पर तीन विद्वेतापूर्ण और महत्त्वपूर्ण किताबें और अनगिनत प्रकाषित अप्रकाषित शोध पत्र और थीसिस सम्मिलित हैं। उनकी तीनों पुस्तकें–

1. ''ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासन और वित्त'' (जीम ।कउपदपेजतंजपवद ंदक थ्पदंदबम व िंज प्दकपं ब्वउचंदल. कोलंबिया विश्वविद्यालय, 1915)।
2. ''रुपये की समस्या : इसकी उत्पत्ति और इसका समाधान'' (जीम च्तवइसमउ व ित्नचममरू पी किंग एण्ड संस, लंदन, 1923)।
3. ''ब्रिटिश भारत में प्रांतीय वित्त का उद्भव : औपनिवेशिक वित्त के प्रांतीय विकेन्द्रीकरण का अध्ययन'' (पी किंग एण्ड संस, लंदन, 1925)।

   पहली और तीसरी पुस्तकें सार्वजनिक वित्त के क्षेत्र में उनके योगदान को दर्शाती हैं। पहली पुस्तक 1792 से 1858 के दौरान ईस्ट इंडिया कंपनी के वित्त का मूल्यांकन तथा दूसरी पुस्तक, मौद्रिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र में एक मौलिक योगदान का प्रतिनिधित्त्व करती हैं। इस पुस्तक में डॉ. अंबेडकर ने 1800 से 1893 के दौरान भारतीय मुद्रा के एक विनिमय के माध्यम के रूप में विकास की जाँच की है। उन्होंने इस पुस्तक में ही 1920 के दशक की शुरुआत में भारत के लिए एक उपयुक्त मुद्रा प्रणाली के विकल्पों की चर्चा की है। तीसरी पुस्तक में उन्होंने 1833 से 1921 के दौरान केंद्र और राज्यों के मध्य वित्तीय रिष्तों के विकास का विश्लेषण किया है।

उनकी अन्य शोध कृतियों में प्रमुख हैं–

1. ''भारत की छोटी जोत और उनके उपचार'' (जरनल ऑफ इकोनोमिक सोसाइटी, भाग–1, 1918),
2. ''भारतीय मुद्रा में वर्तमान समस्या'',
3. ''भारतीय मुद्रा और वित्त'' (1924–25)
4. ''प्राचीन भारतीय वाणिज्य''
5. रॉयल कमीशन के समक्ष सबूत''
6. ''एडमिनिस्ट्रेशन और फाइनेंस का विकेंद्रीकरण'' इत्यादि।

भारत में स्वतंत्रता के उपरान्त, समावेशी विकास प्राप्त करने के लिए आर्थिक योजना शुरू की गई थी। इसके लिए समाज के समाजवादी स्वरूप के उद्देश्य की परिकल्पना की गई थी। इसका तात्पर्य है कि आर्थिक विकास तो हो लेकिन देश का समाजवादी स्वरूप भी अक्षुण्ण रहे। 1947 से 1991 तक, भारत ने अधिक के साथ एक मिश्रित अर्थव्यवस्था पैटर्न का समाज के समाजवादी स्वरूप पर जोर देते हुए कड़ाई से पालन किया। परन्तु 1991 के बाद जेसे ही देश की अर्थव्यवस्था को उदारीकरण और निजीकरण के माध्यम से खोला गया तो पूंजीवादी बाजार व्यवस्था के कारण देश विभिन्न सामाजिक–आर्थिक समस्याओं से पीड़ित होने लगा जैसे आय, धन, विकल्प, पात्रता और अवसरों की बढ़ती असमानताएं। इसके अलावा, मुद्रास्फीति और बढ़ते बजट घाटे की एक सतत समस्याएँ बरकरार रहीं। इसी संदर्भ में, हमें डॉ. बी. आर. अंबेडकर के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आर्थिक विचार याद आते हैं क्योंकि उन्होंने इन समस्याओं पर शोध उस समय में किया था जब पूरे विश्व में उपनिवेशवाद था। उन्होंने जिन सिद्धांतों को उस समय प्रतिपादित किया, उनमें से ''मूल्य स्थिरता'' और ''राजकोषीय उत्तरदायित्व'' से सम्बधित सिद्धान्त आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं।

रुपए की समस्या : इसकी उत्पत्ति और इसका समाधान–

''रुपए की समस्या : इसकी उत्पत्ति और इसका समाधान'' (पी किंग एण्ड संस, लंदन, 1923), शीर्षक से छपा उनका लेख, अंतर्राष्ट्रीय बाजार के संदर्भ में भारतीय रूपये की नियति की व्याख्या करता है। 19वीं सदी में भारतीय रूपये की कीमत, उसको बनाने में काम में ली गई चाँदी की मात्रा से जुड़ी हुई थी। बाद में सोने के वैध मुद्रा के रूप में उठान के साथ, इसकी कीमत सोने की कीमत के साथ जोड़ दी गई। आस्ट्रेलिया और अमरीका में सोने के भंडार मिलने से रूपये की कीमत में गिरावट आई और बाद में दुनिया के विभिन्न हिस्सों में चाँदी के नई खदानों की खोज के बाद,

चाँदी की कीमत भी तेजी से गिर गई। इसका अपरिहार्य नतीजा था रूपये का अवमूल्यन, जिसने भारतीय अर्थव्यवस्था को बुरी तरह प्रभावित किया। सन् 1899 में भारत सरकार ने सोने के सिक्के जारी करने की अनुमति दे दी परंतु चाँदी के सिक्के भी प्रचलन में बने रहे।

सन् 1906 में स्वर्ण प्रतिमान (डवकमस) की स्थापना हुई और भारतीय रूपये की कीमत को उससे जोड़ दिया गया। परंतु भारतीय रूपये की विनिमय दर का निर्धारण करने वाला सोना, भारत की जगह लंदन में रखा गया। इस स्वर्ण भंडार के विरूद्ध भारत में बिना किसी रोक–टोक के भारतीय रूपये छापे जाने लगे। फिर, 1916 में स्वर्ण प्रतिमान बिखर गया और फिर से भारतीय रूपये की कीमत चाँदी से जोड़ दी गई। तत्कालीन आर्थिक सिद्धांतकारों, जिनमें जॉन मेनार्ड कीन्स शामिल थे, के द्वारा रजत प्रतिमान का जबरदस्त समर्थन किए जाने के बावजूद, डॉ. अंबेडकर ने इसकी निंदा की। डॉ. अंबेडकर स्वर्ण मुद्रा के साथ स्वर्ण प्रतिमान के हामी थे, बशर्ते मुद्रा प्रबंधन मजबूत हो। उनका कहना था कि– ''उपभोग्य सामग्री के संदर्भ में रुपये की कीमत स्थिर रहनी चाहिए। आम लोगों के लिए कीमती धातुओं की कीमत का उतना महत्त्व नहीं है, जितना कि उनके रोजमर्रा के इस्तेमाल की वस्तुओं और सेवाओं की कीमत का है।''

अर्थशास्त्र के इतिहास के लब्धप्रतिष्ठित प्राध्यापक अंबीराजन ने मद्रास विश्वविद्यालय में अपने ''अंबेडकर स्मृति व्याख्यान'', में कहा था कि– ''स्पष्टतः डॉ. अंबेडकर का निष्कर्ष यह है कि स्वचालित व संतुलित मौद्रिक प्रबंधन के जरिए कीमतों को स्थिर रखा जाए। यह वर्तमान में बहुत प्रासंगिक है, जब बजट घाटा निरंतर बढ़ता जा रहा है और उसका मुद्रीकरण हो रहा है। ऐसा लगता है कि हमें एक ऐसे स्वचालित तंत्र की आवश्यकता है, जो चलनिधि के निर्माण पर प्रभावकारी ढंग से नियंत्रण लगा सके''।

जातिगत आर्थिक भेदभाव के उन्मूलन के लिए देष का शहरीकरण तेज होना आवष्यक–

डॉ अंबेडकर के अनुसार 'जाति' सामाजिक से अधिक एक आर्थिक समस्या है। जाति व्यवस्था को खत्म करने के लिए भारतीय गाँव के पूरे आर्थिक ढाँचे को पुनर्गठित करने की जरूरत थी। लगभग 70 प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर थी और वे उन गाँवों में रहती थीं जहाँ जाति और सांप्रदायिकता का बेतहासा आलम था।

इसलिए, उन्होंने संविधान सभा में घोषणा की, ''मैं पूर्णतः आष्वस्त हूँ कि ये ग्राम गणराज्य भारत को बर्बाद कर चुके हैं। गाँव क्या है? गाँव वास्तव में स्थानीयता का एक भँवर, अज्ञानता, संकीर्ण मानसिकता और सांप्रदायिकता का अड्डा है। मुझे खुशी है कि संविधान के मसौदे ने 'गाँव' की बजाय 'व्यक्ति' को इकाई के रूप में अपनाया है।''

हम देख सकते हैं कि उपरोक्त विचार, महात्मा गाँधी के ''ग्राम–स्वराज'' से अलग विचार था क्योंकि महात्मा गाँधी चाहते थे कि भारत की आर्थिक इकाई गाँव हो और सभी जातियाँ गाँव में ही रहकर अपना–अपना पारम्परिक काम शान्ति से करती रहें! हम समझ सकते हैं कि यह एक दकियानूसी और अदूरदर्षी सोच है।

बाबा साहब का मानना था कि– ''अगर गाँवों को सामाजिक व आर्थिक बीमारियों से दूर करना है तो कृषि क्षेत्र को फिर से आधुनिक परिस्थितियों के अनुरूप ढालना होगा।'' उन्होंने कहा कि– ''वर्तमान व्यवस्था ने ना केवल जाति व्यवस्था को बनाए रखा है, बल्कि कृषि क्षेत्र की प्रगति में भी बाधा डाली है। तथाकथित उच्च जाति के हिंदू ना तो अपने हाथों से मिट्टी का काम करेंगे और ना ही वे किसी ऐसे व्यक्ति को भूमि हस्तांतरित करेंगे जो इससे सर्वश्रेष्ठ पैदावार प्राप्त कर सके। इसलिए, भूमि का पुनः वितरण आवष्यक है और इसका राष्ट्रीयकरण ही जाति व्यवस्था की रीढ़ तोड़ेगा और उत्पादन में वृद्धि लाएगा, जिससे उद्योगों को खिलाने के लिए ''विपणन योग्य अधिशेष'' पैदा होगा ।''

डॉ. अंबेडकर का तेजी से औद्योगीकरण का औचित्य बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन को बढ़ावा देना था। उनका कहना था कि– ''मानव समाज को अत्यधिक परिश्रम से थोड़ा आराम केवल तभी सम्भव है जब मनुष्य की जगह मशीन लेगी। मशीनरी और आधुनिक सभ्यता, दोनों मनुष्य के लिए विकास की सीढ़ी हैं।''

सामूहिक कृषि और कृषि के राष्ट्रीयकरण के प्रबल समर्थक–

पिछड़े वर्गों के लिए भारत में कोई आर्थिक स्वतंत्रता नहीं थी। उनके पास न जमीन थी, न सामाजिक हैसियत, व्यापार और वाणिज्य या सरकारी नौकरियों में तो कोई भागीदारी थी ही नहीं। इसलिए डॉ अंबेडकर ने खेती की सामूहिक विधि के साथ–साथ उद्योग के क्षेत्र में भी सभी वर्गों की भागीदारी की वकालत की। उन्होंने कृषि में राज्य के स्वामित्त्व की भी वकालत की। वे उन चंद लोगों में से थे जिन्होंने बीमा के राष्ट्रीयकरण की माँग की थी। उनकी दृढ़ राय थी कि– ''भूमिहीन मजदूरों की समस्या को भूमि के एकीकरण या किरायेदारी कानून के माध्यम से सुधारा नहीं जा सकता। केवल सामूहिक फार्म ही समस्याओं का समाधान कर सकते हैं।'' (अंबेडकरः जीवन और मिशन, धनन्जय कीर, 1961)।

डॉ. अंबेडकर ने कहा कि किसी भी जाति या धर्म की परवाह किए बिना, जमीन ग्रामीणों को किराए पर दी जानी चाहिए। राज्य का दायित्त्व होना चाहिए कि वह सामूहिक खेतों की, खेती के पानी की, पशुओं की, उपकरणों की, खाद की, बीज आदि की आपूर्ति को अपने खर्चे से वित्तपोषित करे। बुनियादी और प्रमुख उद्योगों को राज्य के ही स्वामित्त्व में चलाया जाना चाहिए। हम देख सकते हैं कि डॉ. अम्बेडकर किस तरह पिछड़े वर्गों के हित के लिए संशाधनों और उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के महत्त्व को समझते थे और आज हम इसकी बिल्कुल उलट तश्वीर देख रहे हैं कि निजीकरण की जल्दी मची हुई है।

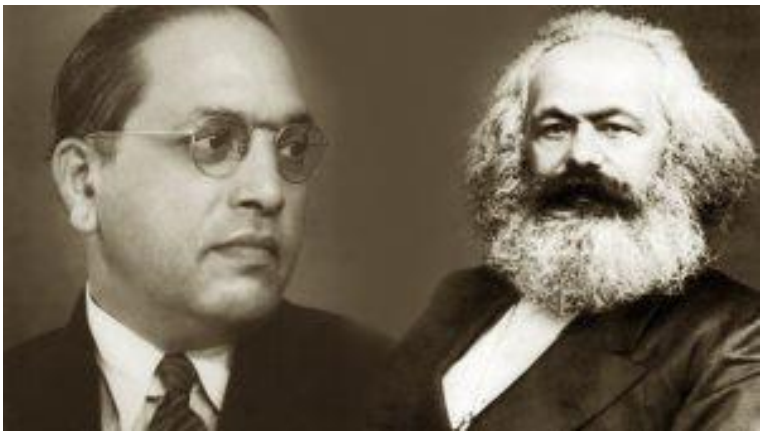

कृषकों की स्थिति की डॉ. अम्बेडकर द्वारा आर्थिक समीक्षा–

डॉ. अंबेडकर ने सन् 1918 में **'स्माल होल्डिंग्स इन इंडिया एंड देयर रेमेडीज'** (उंसस भ्वसकपदहे पद प्दकपं दक जीमपत त्मउमकपमे) के शीर्षक से एक शोधप्रबंध लिखा था। यह शोधप्रबंध, जमीनी यथार्थ की व्याख्या करने में उनके कौशल और आर्थिक समस्याओं से निपटने के लिए व्यावहारिक नीतियों का सुझाव देने में उनकी प्रवीणता को दर्शाता है। उनकी व्याख्या

आज भी हमारे देश के कृषि क्षेत्र के लिए प्रासंगिक है। अगर उनके जैसे लोग, हमारी अर्थव्यवस्था के शीर्ष पर होते तो शायद पिछले 16 वर्षों में 2,50,000 किसानों ने आत्महत्या नहीं की होती।

उन्हें इस बात का एहसास था कि श्रम, पूँजी और पूंजीगत माल, तीनों भारत में कृषि उत्पादन के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। यह आज के भारत की कृषि नीति के बिल्कुल विपरीत है। वर्तमान कृषि नीति, मशीनीकरण और पूंजी–प्रधान उत्पादन पर जोर देती है। इससे छोटी जोतों के किसानों के लिए खेती अलाभकारी व्यवसाय बन जाती है और कृषि श्रमिक या तो पलायन करने पर मजबूर हो जाते हैं अथवा आर्थिक दृष्टि से इतने निर्धन हो जाते हैं कि उनके सामने आत्महत्या के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचता।

डॉ. अम्बेडकर 'स्माल होल्डिंग्स इन इंडिया एंड देयर रेमेडीज' में लिखते हैं– ''पूंजी वस्तु है, और श्रमिक व्यक्ति। पूंजी केवल होती है, श्रमिक जीते हैं। कहने का अर्थ यह कि पूंजी का यदि कोई उपयोग न किया जाता है तो उससे कोई आमदनी नहीं होती है परंतु उस पर कोई खर्च भी नहीं करना पड़ता। परंतु श्रमिक, चाहे वह कुछ कमाए या नहीं, उसे जीवित रहने के लिए स्वयं पर खर्च करना ही पड़ता है। यदि वह यह खर्च उत्पादन से नहीं निकाल पाता, तो वह गलत तरीकों से दूसरों को लूटकर जिंदा रहता है। हमें यह मानना ही होगा कि भारत में छोटी जोतों की समस्या, दरअसल, उसकी सामाजिक अर्थव्यवस्था की समस्या है। अगर हम इस समस्या का स्थायी हल चाहते हैं तो हमें मूल बीमारी का इलाज खोजना ही होगा।''

''किसी व्यक्ति की तरह, किसी समाज की आय दो चीजों पर निर्भर करती हैः (1) किए गए प्रयास व (2) संपत्ति के उपयोग। यह कहना गलत नहीं होगा कि किसी व्यक्ति या समाज की कुल आय या तो उसके द्वारा वर्तमान में किए जा रहे श्रम से आती है या उस उत्पादक संपत्ति से, जो उसके पास पहले से है। इस तरह यह स्पष्ट है कि हमारी कृषि–संबंधी समस्याओं की जड़ हमारी खराब सामाजिक अर्थव्यवस्था में है। भारत में छोटी जोतों की समस्या का हल, जोतों को बड़ा करना नहीं बल्कि पूंजी और पूंजीगत माल में वृद्धि करना है। पूंजी का निर्माण बचत से होता है और राजनीतिक अर्थशास्त्र के सभी विद्यार्थी जानते हैं कि अतिशेष उत्पादन के बिना बचत संभव नहीं है।''

अंबेडकर के विश्लेषण के बारे में सबसे उल्लेखनीय बात है कि उन्होंने विकास अर्थशास्त्र (क्मअमसवचउमदज म्बवदवउपबे) में कालान्तर में प्रचलन में आने से बहुत पहले ही ''प्रच्छन्न बेरोजगारी'' (क्पेहनपेमक न्दमउचसवलउमदज) की धारणा की परिकल्पना प्रतिपादित कर दी थी। उन्होंने नाबेल पुरस्कार विजेता **आर्थर लुईस** से लगभग 3 दषक पूर्व ही उस सिद्धान्त को प्रतिपादित कर दिया था जिसकी बुनियाद पर लुईस के अर्थषास्त्र का **दो सैक्टर सिद्धान्त** प्रतिपादित किया जाना था। लुईस ने माना कि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में कृषि क्षेत्र में श्रमिक अधिशेष और निष्क्रिय हैं और समझाने का प्रयास किया कि कैसे खेतों से श्रमिकों को कारखानों में स्थानांतरित करने से दोनों क्षेत्रों में बचत और उत्पादकता का स्तर बढ़ेगा जिससे अर्थव्यवस्था का समग्र विकास होगा। जो बात अपने नोबेल पुरस्कार जिताने वाले आर्थिक मॉडल में लुईस ने 1954 में कुछ अधिक विस्तृत रूप में कही थी वही बात डॉ. अंबेडकर ने 1927 के अपने बंबई (वर्तमान मुम्बई) विधान सभा के पटल पर भूमिजोत को विनियमित करने के प्रस्ताव पर बहस करते हुए दिए गए भाषण में रेखांकित की थी।

डॉ. अंबेडकर ने प्रासंगिक आंकड़ों का उपयोग कर यह स्पष्ट किया कि– ''भारत की कृषि संबंधी समस्याओं को हल करने का सबसे अच्छा उपाय है औद्योगिकीकरण।'' वे कहते हैं कि– ''औद्योगिकीकरण से– बेकार बैठे श्रमिकों का, अत्यधिक षेष बचे उत्पादन का और कृषि भूमि पर बढते दबाव का, इन तीनों समस्याओं का एक झटके में हल मिल जाएगा और साथ ही जोतों के और छोटे होते जाने की प्रक्रिया भी थम जाएगी।'' वे उन चन्द आर्थिक सिद्धांतकारों में से एक थे, जिनका आर्थिक नीतियों और योजनाओं के प्रति दृष्टिकोण व्यावहारिक और लोकहितकारी था। 'सामाजिक अर्थव्यवस्था' पर उनका जोर, उन्हें आधुनिक आर्थिक चिंतकों में एक अनूठा स्थान प्रदान करता है।

मजबूत अर्थ व्यवस्था के लिए आवष्यक हैं श्रम सुधार–

डॉ. अंबेडकर श्रमिक वर्ग और उनकी सामाजिक सुरक्षा के लिए प्रतिबद्ध थे। उन्होंने दो वायसराय, लॉर्ड वेवेल और लॉर्ड लिनलिथगो की 'कार्यकारी परिषद' में काम किया। 2 सितंबर, 1945 को वायसराय की कार्यकारी परिषद में उनके द्वारा प्रतिपादित ''लेबर चार्टर'' बाद में ''श्रम कल्याण योजना'' का आधार बन गया।

20 जुलाई, 1942 को डॉ. अंबेडकर वायसराय की कार्यकारी परिषद के श्रम सदस्य बने, हालांकि कम दिन के लिए ही सही फिर भी यह देश में श्रम कानून कल्याण के इतिहास में अत्यन्त उल्लेखनीय समय था। इस अवधि के दौरान 'कारखाना अधिनियम' में संशोधन किया गया ताकि वेतन–सहित अवकाष और कम कार्य घंटे सुनिश्चित किए जा सकें। इसी दौरान 'भारतीय खान अधिनियम' और 'खान मातृत्त्व लाभ अधिनियम' में संशोधन किया गया ताकि श्रमिकों को अधिक लाभ और बेहतर सुविधाएँ प्रदान की जा सकें। रोजगार के नियमों और शर्तों से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण विधान भी पारित किया गया। इन सभी सुधारों से भी अधिक डॉ अंबेडकर को ''सांविधिक कल्याण कोषों'' और ''सामाजिक बीमा'' के क्षेत्र में सफलता के लिए लंबे समय तक याद किया जाएगा।

''त्रिपक्षीय श्रम सम्मेलन'', 1942 में, नई दिल्ली में आयोजित किया गया था। सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में डॉ. अंबेडकर ने कहा– ''इन श्रम सम्मेलनों के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ है कि कर्मचारियों और नियोक्ताओं के प्रतिनिधि को संयुक्त सम्मेलन के दायरे में आमने–सामने लाया गया है। इसने मजदूरों और नियोक्ताओं को समझने और एक दूसरे को प्रभावित करने के अलावा सरकार के फैसलों को भी काफी प्रभावित किया।

अंबेडकर ने अपने चिंतन में ''आर्थिक शोषण'' के विरुद्ध एक समाधान सुझाया था कि प्रमुख उद्योगों का स्वामित्व और संचालन राज्य के अधीन होना चाहिए तथा कृषि को एक राज्य उद्योग घोषित किया जाना चाहिए। अंबेडकर ने तर्क दिया कि तीव्र औद्योगीकरण के लिए औद्योगिक क्षेत्र में राज्य द्वारा लागू समाजवाद का एक संशोधित रूप आवश्यक है, और सामूहिक खेती भूमिहीन श्रमिकों, विशेषकर ''अछूत'' वर्गों से संबंधित लोगों, के लिए मोक्ष का एकमात्र मार्ग है।

''संवैधानिक विशेषज्ञ'' यह मान सकते हैं कि अंबेडकर द्वारा प्रस्तावित श्रम सुधार के ये प्रावधान पारंपरिक मौलिक अधिकारों की परिधि से बाहर जाते हैं, इसके लिए भी अंबेडकर ने स्पष्ट किया कि यह दृष्टिकोण मौलिक अधिकारों की एक अत्यंत संकीर्ण व्याख्या पर आधारित होगा। उनका तर्क था कि यदि मौलिक अधिकारों का उद्देश्य व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करना है, तो उनके प्रस्ताव भी इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। उन्होंने यह भी दलील दी कि केवल लाभ पर आधारित अर्थव्यवस्था ने राजनीतिक लोकतंत्र के दो मूलभूत सिद्धांतों का उल्लंघन किया है– पहला, इसने राज्य के स्थान पर निजी नियोक्ताओं को व्यक्तियों के जीवन पर नियंत्रण का अधिकार दे दिया, और दूसरा, यह व्यवस्था किसी व्यक्ति को जीवित रहने की शर्त पर अपने सभी संवैधानिक अधिकारों को त्यागने के लिए बाध्य कर सकती है।

अंबेडकर ने लिखा कि "यदि किसी व्यक्ति को बेरोजगार कर दिया जाए और उसे एक सीमित विकल्प दिया जाए कि उसे किसी विशेष प्रकार की नौकरी, निर्धारित मजदूरी, निश्चित कार्य घंटे तभी प्राप्त होंगे जब वह किसी संघ में शामिल नहीं होगा और भाषण, संगठन, धर्म इत्यादि की उसकी स्वतंत्रता पर अंकुश रहेगा तो इसमें संदेह नहीं कि उसकी 'चुनाव की स्वतंत्रता' वास्तविक नहीं रह जाती। भूख का भय, घर और बचत खोने की आशंका, ये सब ऐसे शक्तिशाली कारक हैं, जो किसी भी व्यक्ति को अपने मौलिक अधिकारों की तिलांजलि देने के लिए विवश कर सकते हैं।"

डॉ. अंबेडकर के आर्थिक–समाजवाद की विरासत–

डॉ अंबेडकर ने, पारित होने से पहले संविधान पर अपने आखिरी भाषण में कहा था– ''26 जनवरी, 1950 को हम राजनीति में तो समानता हासिल कर लेंगे परन्तु सामाजिक और आर्थिक जीवन में असमानता ही रहेगी। हमें इस विरोधाभास को शुरुआती समय में ही दूर करना चाहिए वरना जो लोग असमानता से पीड़ित हैं, वे राजनीतिक लोकतंत्र की संरचना को ही निरर्थक सिद्ध कर देंगे, जो कि हमने बड़ी मेहनत से हासिल की है।''

उन्होंने कहा कि– ''पारंपरिक भारतीय समाज के विभाजन, असमानताओं और अन्यायों पर खड़ा राजनीतिक लोकतंत्र गाय के गोबर पर बने महल की तरह होगा।''

डॉ. अंबेडकर ने 17 सितंबर 1943 को दिल्ली में अखिल भारतीय मजदूर संघ के शिविर में कहा कि– ''इटली, जर्मनी और रूस में संसदीय लोकतंत्र इतनी आसानी से क्यों ढह गया? इंग्लैंड और अमेरिका में यह इतनी आसानी से क्यों नहीं गिरा? मेरे विचार से केवल एक ही उत्तर है कि– पूर्व की तुलना में बाद के देशों में आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र की एक बड़ी हिस्सेदारी रही है।

''सामाजिक लोकतंत्र और आर्थिक लोकतंत्र एक राजनीतिक लोकतंत्र के ऊतक और रेशे हैं। लोकतंत्र समानता का दूसरा नाम है।''

डॉ. अंबेडकर के ये शब्द एक तरह की भविष्यवाणी थे– **''इतिहास हमें बताता है कि जब भी आर्थिक और नैतिक मुद्दों के बीच टकराव होता है, जीत हमेशा आर्थिक मुद्दों की होती है। निहित स्वार्थ तब तक अपने हितों को नहीं त्यागते, जब तक कि उन्हें ऐसा करने के लिए मजबूर न कर दिया जाए।''** ('वॉट गाँधी एंड कांग्रेस हैव डन टू द अनटचेबल्स'–अध्याय–7)। आज का आर्थिक परिदृष्य हमें बता रहा है कि निहित स्वार्थ कैसे सर्वोपरि बने हुए हैं।

डॉ. अम्बेडकर द्वारा बताए गए सामाजिक लोकतंत्र और आर्थिक लोकतंत्र के नुस्खे अब गौण हो गए हैं। आज फिर एक अर्थषास्त्री अम्बेडकर की आवष्यकता है जो इस देष को निष्चित सर्वनाष से बचा सके। लेकिन जिस तरह उनके राजनीतिक सिद्धान्तों को आज सभी रंगों के राजनेताओं द्वारा अपना बताया जा रहा है कि वे उनकी तरफ थे, आज उनका अर्थशास्त्र भी वामपंथी और दक्षिणपंथी राजनीतिज्ञों के बीच एक लड़ाई का मैदान बन गया है। दोनों पक्षों का दावा है कि वे वास्तव में उनके पक्ष में थे। लेकिन अंबेडकर के लेखन को सावधानीपूर्वक पढ़ने से यह सिद्ध हो जाता है कि ना तो वे अहस्तक्षेप अर्थव्यवस्था ;संपेम्र.पितम मबवदवउलद्ध के हिमायती थे और ना ही एक क्रांतिकारी समाजवादी (त्मअवसनजपवदंतल ैवबपंसपेज) थे। इसी प्रकार, हालांकि अंबेडकर ने औद्योगीकरण और शहरीकरण के पक्ष में बात की, लेकिन उन्होंने पूंजीवाद की बुराइयों की चेतावनी भी दी। उनका तर्क था कि निरंकुश पूंजीवाद उत्पीड़न और शोषण की ताकत में बदल सकता है।

अम्बेडकर की छवि का त्रुटिपूर्ण चित्रण–

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के जन्म का सम्बन्ध हाषिए पर निवास करने वाले एक सामाजिक समूह से होने के कारण उन्हें केवल 'प्रतिनिधित्त्व के सिद्धान्त' (जिसे कालान्तर में 'आरक्षण' के नाम से जाना गया) के प्रतिपादक के रूप में ही अधिक लोकप्रिय किया गया है जबकि उनकी अन्य क्षेत्रों की विधाओं और उपलब्धियों, जैसे उनके श्रम सुधार, एक निपुण अर्थषास्त्री, नारी स्वतंत्रता के कानूनों प्रतिपादक, भारतीय रिजर्व बैंक के जन्मदाता इत्यादि को स्वतन्त्रता उपरान्त के विचारकों ने उभरने और लोकप्रिय होने नहीं दिया। आज उनके इस ज्ञान को पुनर्जागृत करने की आवष्यकता है और अम्बेडकर के साहित्य को बिना किसी पूर्वाग्रह के अध्ययन करने का आवष्यकता है ताकि देष का सार्वभौमिक आर्थिक और सामाजिक विकास सम्भ्व हो सके।

संदर्भ ग्रन्थ–

1. अहीर, डी. सी. (1990) ''डॉ अंबेडकर की विरासत'' बी. आर. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, नई दिल्ली।
2. अंबेडकर, बी आर (1997) ''भारत में जाति''– उनका तंत्र, उत्पत्ति और विकास, पत्रिका, भारत में नीला।
3. अंबेडकर, बी आर (1989) अछूत और छुआछूत (सामाजिक–राजनीतिक–धार्मिक) लेखन और भाषण (टवस. 5), एड. विभाग, महाराष्ट्र सरकार, भारत।
4. अंबेडकर, बी आर (1990) ''कौन थे शूद्र?'' लेखन और भाषण – (टवस. 7), एड. विभाग, सरकार महाराष्ट्र, भारत।
5. बुसी, एस एन (1997) महात्मा गाँधी और अंबेडकर योद्धा जाति के खिलाफ और छुआछूत, पलक प्रकाशन, जालंधर, भारत।
6. देसाई, ए आर (1991) ''भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि'', लोकप्रिय प्रकाशन, हैदराबाद, भारत।

———————————————